शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतेंदु का नाट्य व्यक्तित्व

डॉ. नविता चौधरी
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
कालकाजी, नई दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

भारतेन्दु यदि हिन्दी में नए युग के जनक स्वीकार किए जाते हैं तो इसके पीछे उनका भागीरथ प्रयास है जो तत्कालीन अन्य साहित्यकारों के साथ एक सार्थक परिणति में तब्दील होता है। इसलिए वसुधा डालमिया ने उन्हें उत्तर भारत की अस्मिता का निर्माता भी कहा है। वे लिखती हैं "हरिश्चंद्र के कृतित्व को उत्तर भारत में हिन्दू धार्मिक परंपरा के निर्माण के क्षेत्र में एक बहु प्रसारित प्रवृत्तिके प्रतिनिधि के रूप में देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के संसार में भारी प्रतिष्ठा प्राप्त, पवित्र नगरी काशी और उसकी संस्थाओं के प्राधिकार बल से बोलते हुए एक अग्रणी पत्रकार के रूप में हरिश्चंद्र ने स्पष्टतः न सिर्फ जनमत को अभिव्यक्ति दी बल्कि इसका निर्माण भी किया है।"1 लेकिन भारतेन्दु के इस ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिए इतिहास का थोड़ा उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि 1947 के पूर्व का कोई भारतीय घटनाक्रम उपनिवेशवाद की चर्चा के बिना नहीं समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतेंदु के नाट्य व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

भारतेंदुकालीन परिस्थिति

19वीं शताब्दी का काल कई कारणों से न सिर्फ हिन्दी साहित्य बल्कि विश्व के अधिकांश साहित्यों में महत्वपूर्ण उपस्थिति बना रहा था। इस समय भारत में साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद जैसी दो जटिल समस्याएँ विद्यमान थीं। जिनके फलस्वरूप भारत के साथ-साथ भारतीय मानसिकता भी गुलाम हो चुकी थी। भारतीय जनमानस एक ओर कठिन सामंती हथकंडों की मार से त्रस्त था तो दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से आक्रान्त। समाज में प्रभावशाली वर्ग के रूप में जमींदार अपनी मनमानी करके किसानों का खून चूस रहे थे, फलतः किसान दिन-प्रतिदिन मजदूर होते जा रहे थे। (इसे प्रेमचंद् ने 'गोदान' में रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है) अंग्रेजों ने जमींदारी प्रथा की स्थापना की। इसके तहत वे यहाँ के राजाओं को अपनी मुट्ठी में रखकर स्वयं हर क्षेत्र में सर्वे-सर्वा बने रहे। (ब्रिटिश सरकार ने उत्तम राजस्व वसूली के लिए जमींदारी, महलवाड़ी और रैयतवाड़ी तीन पद्धतियाँ लागू की थीं। वे अंग्रेज जमींदारों के जमींदार हो गये।)

'हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज सबसे बडे. जमींदार की भूमिका निबाह रहा था। यह नया जमींदार पुराने जमींदारों से कहीं अधिक क्रूर और शोषक था। इसका प्रमाण यह है कि भुखमरी से लाखों किसान मर गये, यह भुखमरी भारतीय अर्थतंत्र की विशेषता बन गई।"2 देश की सामाजिक तथा आर्थिक जटिलताओं के कारण भारतीय जनमानस आंदोलित हो उठा जिसका स्वाभाविक परिणाम 1857 के विद्रोह के रूप में सामने आया। इसी समय से हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की शुरुआत हुई। रामविलास शर्मा के अनुसार हिन्दी क्षेत्र में यहाँ से नवजागरण की शुरूआत हुई।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

रामविलास शर्मा के अनुसार हिन्दी क्षेत्र में यह नवजागरण की पहली कड़ी है। 19वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में देश में नवीन शिक्षा प्रणाली को प्रश्रय मिला, जिसके फलस्वरूप भारत पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने लगा। तत्कालीन भारतीय ज्ञान की आधारशिला आध्यात्मिक तथा परंपरागत थी। किन्तु पाश्चात्य ज्ञान जीवन के विविध पक्षों तथा नये संदर्भो पर आधारित था। 'भारतीय ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था, तो पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का भौतिक और इहलौकिक। इस देश की विद्या, वर्ग या जाति विशेष तक सीमित थी, पर पाश्चात्य विद्या सर्वसुलभ थी।"3 शिक्षा की यह नवीन पद्धति भारतीयों को नई दृष्टि देने में ज्यादा कारगर सिद्ध हुई। अब भारतीय जनता अपनी त्रासद स्थिति के प्रति सजग हुई एवं स्थिति से उबरने की कोशिश करने लगी। इस दिशा में प्रेस की स्थापना एक सकारात्मक कार्य था। सर्वप्रथम पुर्तगालियों ने 1550 ई. में प्रेस की स्थापना की एवं धार्मिक पुस्तकें छपवानी शुरू कर दीं। इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1674 में बंबई में छापाखाना खोला। 18वीं शताब्दी में मद्रास, कलकत्ता, हुगली इत्यादि में छापेखानी की स्थापना की गई तथा समाचार-पत्र निकाले जाने लगे। तत्कालीन समस्याओं को केन्द्र बनाकर पत्र निकालने का सर्वप्रथम सफल प्रयास राजा राममोहन राय ने किया। 1821 ई. में उन्होंने 'संवाद-कौमुदी' का प्रकाशन किया। 1826 में हिन्दी का पहला समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' तथा इसके बाद 'बंगदूत', 'प्रजामित्र', 'समाचार सुधावर्षण', 'बनारस अखबार' इत्यादि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इससे विविध गतिविधियों के साथ-साथ साहित्य के विस्तार का कार्य आरंभ होने लगा। भारतीय साहित्य तथा संस्कृति, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति शास्त्र, विज्ञान, दर्शन शास्त्र इत्यादि पर खुलकर लिखा जाने लगा एवं प्रेस की सुविधा से पुस्तकों के मुद्रण की प्रक्रिया लगातार बढ़ती चली गयी।

हिन्दी साहित्य में ब्रजभाषा एवं पद्यात्मक शैली के स्थान पर खड़ी बोली तथा गद्य के विकास का कार्य एक अभियान के तहत चलाया जाने लगा। इसके पूर्व राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' एवं राजा लक्ष्मण सिंह की हिन्दी, उर्दू-फारसी प्रधान एवं संस्कृतिनिष्ठ थी। खड़ी बोली साहित्य को सुचारू रूप से प्रतिष्ठित करने का काम भारतेन्दु हरिश्चंद्र एवं उनके सहयोगियों ने किया।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र : नवजागरण के अग्रदूत

भारतेन्दु हरिश्चंद्र को नवजागरण का अग्रदूत माना जाता है। भारतेन्दु ने साहित्य के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी नवजागरण जैसे महान यज्ञ का श्रीगणेश किया। वास्तव में भारतेन्दु एक व्यक्ति नहीं युग थे। खड़ी बोली हिन्दी के विकास से लेकर साहित्य की विभिन्न विधाओं के जन्मदाता तथा साहित्य को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने में भारतेन्दु के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। संपूर्ण देश में नवजागरण की इस आग को फैलाने में भारतेन्दु के नाटकों की देन सर्वाधिक रही है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।'4 भारतेन्दु मंडल के साहित्यकारों ने साहित्यकार और समाज सुधारक दोनों का कार्य एक साथ किया। इस युग के साहित्यकारों ने योजनाबद्ध ढंग से नाटकों का विकास किया और इसे जन-जन के प्रचार का माध्यम बनाया। "इस समय के नाटकों की संख्या शताधिक है और उनमें विषय

वैविध्य है। प्रहसन शैली में लिखे गये नाटकों का स्वर व्यंग्यात्मक होने के साथ परंपरा और रूढ़ि विद्रोही ही अधिक है। इन नाटकों द्वारा लेखक पाठक या दर्शक में नयी चेतना जगाना चाहते हैं। यह पुनर्जागरण की प्रेरणा का ही परिणाम है। कुरीतियों तथा कुव्यसनों पर तीव्र प्रहार करने के साथ भविष्य के लिए सही मार्ग दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है।"5

भारतेन्दु के पूर्व नाटकों में से प्राणचन्द चौहान कृत 'रामायण महानाटक' (1610 ई.), हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' (1623 ई.) बनारसी दास का 'समयसार' नाटक (1636 ई.) तथा नेवाज कवि कृत 'शकुन्तला उपाख्यान' इत्यादि महत्वपूर्ण हैं, किन्तु इनमें नाटकीयता का अभाव पाया जाता है। अतः शुक्ल जी ने हिन्दी का प्रथम नाटक विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित 'आनंदरघुनंदन' को माना है। शुक्ल जी ने लिखा है, "आनंद रघुनंदन नाटक विशेष महत्व की वस्तु है.....हिन्दी के प्रथम नाटककार के रूप में ये चिर-स्मरणीय है।"6 बाबू ब्रजरत्न दास तथा बाबू गुलाबराय ने भी 'आनंद रघुनंदन' को ही हिन्दी का पहला मौलिक नाटक माना है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने पिता गिरिधर दास द्वारा रचित 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि, "श्री महाराज विश्वनाथ सिंह रीवा का 'आनंद रघुनंदन' नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय जैसे नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और ये छंद्-प्रधान ग्रन्थ है विशुद्ध नाट्य रीति से पात्र-प्रवेशादि-नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है।"7

ये दोनों नाटक हिन्दी साहित्य-जगत् में चर्चित होने के बावजूद भी कलात्मकता और समकालीनता के प्रश्न पर भारतेन्दु के नाटकों से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते। यद्यपि भारतेन्दु के नाटकों में भी काव्य को प्रमुख स्थान दिया गया है किन्तु इसमें नाटकीयता का अभाव नहीं है। भारतेन्दु से पूर्व जो इन्दर सभा की परंपरा मौजूद थी उसका स्वरूप न केवल साहित्यिक बल्कि रंगमंचीय भी था। अमानत ने 'इन्दर सभा' द्वारा जिस नाट्य शैली का विकास किया वह नृत्य, संगीत तथा लोक-कथाओं के समन्वय से एक नीवन रंगमंच के स्वरूप को सामने लाता है।

"वाजिद अली शाह के युग में संस्कृत नाटकों का चलन समाप्त हो चुका था। उस समय नाटकों के नाम पर रामलीला, रासलीला, भगत बाजी, भड़ैती, स्वांग आदि का चलन आमतौर पर था। उसी के साथ-साथ दास्तान गोई, मर्सियाख्वानी और मुसरे का भी प्रदर्शन होता था। वे सभी लोक परम्पराएँ नाच, गाना, संगीत और अभिनय का एक बहुत अच्छा नमूना पेश करती थीं। अमानत इससे प्रभावित हुए और उन्होंने उन सभी चीजों के मिश्रण से हिन्दू-मुस्लिम तहजीब का एक संगम इन्दर-सभा के रूप में तत्कालीन जनरूचि के अनुकूल पेश किया और मंचन की विधि भी इन लोक परंपराओं पर ही आधारित रखी।"8 यद्यपि इन्दर सभा की परंपरा काफी लोकप्रिय रही, किन्तु इसमें जनरूचि के साथ-साथ नवाबी रूचि के अनुरूप ही विलासी वातावरण को भी विशेष नज़ाकत के साथ प्रस्तुत किया जाता था। अतः नाटक का वहाँ वह स्वरूप नहीं था, जो भारतेन्दु के नाटकों में है। नाटक विधा के द्वारा ही भारतेन्दु ने साहित्य को 'संस्कृत बुद्धि और संस्कृत हृदय' के संकुचित दायरे से निकालकर 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब बनाने

का कार्य किया। भारत की अनपढ़, युगों से शोषित जनता में जागृति लाने, उसके अधिकारों का बोध कराने के लिए नाट्य विधा ही सबसे उपयुक्त माध्यम है।

"नाटक सभी साहित्य और कला-माध्यमों के बीच अपनी प्रकृति में सर्वाधिक सामाजिक है। रंगमंच पर उसका प्रस्तुतिकरण अनेक प्रकार के कलाकारों के सहयोग से होता है, वैसे ही उसका आस्वादन समाज के रूप में किया जाता है। इस स्थिति में पुनर्जागरण की व्यापक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नाटक ही सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम था। यों गद्य के क्षेत्र में नाट्य-माध्यम का पहला चुनाव करके भारतेन्दु ने अपनी सही ऐतिहासकि दृष्टि का परिचय दिया।"9

भारतेंदु का नाट्य व्यक्तित्व

भारतेन्दु ने मौलिक, अनूदित कुल मिलाकर सत्रह नाटकों का प्रणयन किया। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में तत्कालीन समाज की धार्मिक विकरालता व्यंजित हुई है। इस प्रहसन के माध्यम से भारतेन्दु ने धर्म की ओट में हो रहे व्यभिचार तथा पाखण्ड की पगड़ी धारण करने वाले शासक और उनके चाटुकारों पर चोट की है। ध्यातव्य है कि उस समय भारत में अनेक सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विडम्बनाएँ व्याप्त थीं। इस प्रहसन के सभी पात्रों का चित्रण भारतेन्दु ने प्रतीक रूप में किया है। राजा, पुरोहित, साधू गंडकीदास इत्यादि सभी पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। महाराज गृद्धराज उन राजाओं तथा पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं जो सिर्फ मांस-मंदिरा भक्षण, जुआ तथा स्त्री-सुख में ही जीवन के आनंद का अनुभव करते हैं और वह इस कार्य के लिए धर्म का सहारा लेते हैं ताकि समाज में उसकी प्रतिष्ठा बरकरार रहे। इसी प्रकार पुरोहित का चरित्र समाज के उन पुरोहितों के चरित्र को रेखांकित करता है जो अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म तथा शास्त्र की गलत व्याख्या कर जजमान के अनैतिक कार्य को भी धर्मसम्मत बताते हैं। डा.रमेश गौतम के अनुसार, "सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में व्याप्त उक्त विकृतियों तथा पाखण्डों की यथार्थता का उद्घाटन करके जनसामान्य को इसके प्रति सचेत करना नाटककार का मुख्य उद्देश्य है। धर्म वंचकों के वामाचार तथा पाखण्डों की भर्त्सना कर शैव-वैष्णव भावना का प्रतिपादन भी नाटककार का प्रयास है। इस प्रहसन में भारतेन्दु की राजनीत्कि चेतना का परिचय भी मिलता है।"10

पौराणिक कथा के आधार पर निर्मित 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक की मौलिकता को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद हैं। आचार्य शुक्ल उसे बंगला नाटक का अनुवाद मानते हैं किन्तु बाबू ब्रजरत्न दास इसे मौलिक रचना बताते हैं। इस नाटक की रचना भारतेन्दु ने क्षेमेश्वर के 'चण्डकौषिक' से सहायता अवश्य ली है किन्तु इसका संपूर्ण अनुवाद नहीं किया है। इसे हम भारतेन्दु की अर्ध-मौलिक रचना कह सकते हैं। नाटक की भूमिका में भारतेन्दु ने लिखा है "मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद बी.ए. ने मुझसे कहा कि आप कोई ऐसा नाटक लिखे हैं, वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चंद्र नामक रूपक लिखा है।"11

भारतेन्दु का 'प्रेमयोगिनी' नाटक सामाजिक तथा धार्मिक विसंगतियों के साथ-साथ दैवीय सत्ता पर भी व्यंगयात्मक प्रहार करता है। किन्तु यह नाटक किसी कारणवश पूर्ण नहीं हो पाया, इस नाटक में काशी के पण्डों, पुरोहितों एवं उनके

पाखण्डों की कड़ी आलोचना की गई है। इस अपूर्ण नाटक का सर्वप्रथम प्रकाशन 'हरिश्चंद्र' में काशी के छायाचित्र या दो भले-बुरे फाटोग्राफ' के नाम से हुआ था। 'प्रेमयोगिनी' में सुनिश्चित कथानक का अभाव है, जिसके कारण पात्रों के चरित्र के विकास में बाधा पडी है। अपूर्ण होने के कारण नाटक और नामकरण में भी कोई तारतम्य स्थापित नहीं हो सका, क्योंकि 'प्रेमयोगिनी' में नारी पात्रों का नितान्त अभाव है। 'प्रेमयोगिनी' की भाषा काशी की विशुद्ध स्थानीय बोली है। अभिनय की दृष्टि से नाटक असफल है। यदि यह नाटक पूर्ण हो गया होता तो अपनी पूर्णता में तत्कालीन काशी के समग्र जीवन की झांकी प्रस्तुत करने में सफल होता।"12

'विषस्य विषमौषधम्' नाटक की रचना 1876 में भाण शैली में की गई थी। भाण प्राचीन नाट्यशास्त्र की एक विशेष शैली है। इसकी विशिष्टता इस बात में निहित है कि इसमें एक ही पात्र होता है और उसे अत्यंत ही कुशलता से रोने, हँसने, गाने, नृत्य, उछलने-कूदने इत्यादि सबका अभिनय करना पड़ता है। प्रस्तुत भाण में बड़ौदा के राजा मल्हारराव के राज्य के इतिहास को व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। साथ ही प्रसंगवश उन राजाओं के भाग्य पर भी व्यंग्य किया गया है जो अंग्रेजों के हाथ शतरंज की मुहरें बने एवं मानवता के प्रश्न पर समझौता किये हुए थे।

'चंद्रावली' नाटिका में भारतेन्दु ने पौराणिक कथा के आधार पर प्रणयानुभूति तथा हृदयगत भावों को अत्यंत कलात्मकता के साथ अंकित किया है। 'भागवत' अथवा 'सूत्रधार' में चंद्रावली का उल्लेख राधा की सखी के रूप में मिलता है। यहाँ चंद्रावली प्रसंग को विस्तार नहीं दिया गया है। किन्तु प्रस्तुत नाटिका में चंद्रावली का कृष्ण की प्रेमिका के रूप में चित्रण करना भारतेन्दु की मौलिक कल्पना है। भारतेन्दु ने चंद्रावली के प्रगाढ़ प्रेम की तल्लीनता और विरहजन्य पीड़ा को अत्यंत ही मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है। नाटिका में प्रस्तावना, नान्दीपाठ, भरतवाक्य इत्यादि शास्त्रीय दृष्टि के परिचायक हैं।

'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु ने प्रतीक पात्रों के माध्यम से भारत की तत्कालीन स्थिति का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है। भारतेन्दु के लगभग सभी नाटकों में भारत की दुरावस्था, दुरावस्था के कारण तथा उससे मुक्ति के मार्ग का अन्वेषण किया है, जिसे हम युगीन परिस्थितियों की देन कह सकते हैं। डॉ. रमेश गौतम ने लिखा है, "भारत-दुर्दशा में भारतेन्दु की राष्ट्रीय चेतना प्रखर है। नाटककार का उद्देश्य देश की राजनीतिक एवं सामाजिक दुरावस्था का उद्घाटन करते हुए भारत भूमि के उद्धार की भावना को लोगो में जागृत करना है। 'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु ने भारत के अधःपतन के कारणों की जांच करते हुए पराधीन देश की निराशा को व्यापक स्वर प्रदान किया है।"13 प्रस्तुत नाटक में भारत, भारत दुर्दैव, आशा, निर्लज्जता, सत्यानाश, फौजदार, रोग, आलस्य, मदिरा, अंधकार, इत्यादि प्रतीक पात्रों के माध्यम से देश के आन्तरिक शत्रुओं को उजागर किया है। जो विदेशी शत्रुओं को प्रश्रय देने में सर्वाधिक सहायक है। इस नाटक में भारतेन्दु का उद्देश्य जनता को अपने ही घर में पनपी विसंगतियों के प्रति सचेत करना है। इसके बावजूद भी यदि जनता सचेत न हुई तो भारत भाग्य के पास आत्मकथा के अलावा कोई चारा नहीं है। व्यंग्यात्मक एवं सरल परिमार्जित भाषा शैली में लिखा गया यह नाटक अभिनय के प्रश्न पर भी प्रभावोत्पादक है। इस नाटक के संबंध में

विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है, "भारत दुर्दशा' भारतेन्दु का एक सुप्रसिद्ध संपूर्ण छः अंकों का नाटक है, जिसमें भारत का अतीत गौरव वर्तमान स्थिति और उसके सुधार का इंगित है। नैराश्यपूर्ण अंत होने पर भी यह नाटक पुनर्जागरण काल का सबसे ओजस्वी स्वर है।"14 'भारत जननी' नाटक में भी 'भारत दुर्दशा' की तरह देश की दयनीय स्थिति का चित्रण एवं राष्ट्र जागरण का प्रयत्न किया गया है। नाटक में भारत माता का करूण क्रंदन स्पष्ट रूप से लक्षित होता है, "हाय क्या हुआ ? वत्स। कब तक इस प्रकार से तुम निद्रित रहोगे, सब सोने का समय नहीं, एक बेर आँखें खोल भली-भाँति पृथ्वी की दशा को तो देखो।" इस प्रकार नाटककार ने यहाँ निद्राग्रस्त भारतीयों को जगाने का भरपूर प्रयत्न किया है। प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से भारतेन्दु ने भारतीय विडम्बनाओं के साथ-साथ अंग्रेजी सभ्यता के विभिन्न जातिगत स्वरूप को भी चित्रित किया है। नाटक में गीतों की अधिकता के साथ-साथ सरल एवं कलात्मक दृष्य-योजना का निर्वाह भी है।

सत्रह गीतों से निर्मित 'नीलदेवी' नाटक को गीतिरूपक की श्रेणी में रखा गया है। नाटक का प्रारंभ नाटककार प्रस्तावना से न करके पाश्चात्य नाट्य शैली के अनुसार अप्सराओं के कोरस गान से करता है। प्रस्तुत नाटक मुगलकालीन एक ऐसी क्षत्राणी वीरांगना का चित्र उपस्थित करता है जो अपने पति की मृत्यु का प्रतिशोध कूटनीति से लेती है। ध्यातव्य है कि उस समय के भारतीय समाज में स्त्रियाँ पर्दो और तमाम बंधनों में जकड़ी हुई थी। स्त्रियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। भारतेन्दु के नाटकों में व्यक्त सामाजिक चेतना, स्त्री स्वतंत्रता एवं अधिकार बोध को मुख्य रूप से व्यक्त करती है। प्रस्तुत रूपक में भारतेन्दु ने नीलदेवी के चरित्र के माध्यम से यह दर्शाने की कोशिश की है कि नारी-जीवन की सार्थकता सिर्फ पुरूष की भोग्या बनी रहने में नहीं है। वह विदेशी स्त्रियों के समान शिक्षित हो सकती है, उसका भी स्वच्छंद वातावरण है और वह अपने आप में पूर्ण सक्षम व्यक्तित्व है। डॉ.रमेश गौतम के शब्दों में, "स्वयं भारतेन्दु नारी-नवोत्थान के प्रमुख उद्घोषक थे। यह आकस्मिक नहीं था। राजा राममोहन राय और महर्षि दयानंद सरस्वती आदि ने इसका सूत्रपात कर दिया था। वे लोग समाज सुधारक थे अथवा धर्म प्रचारक, रचनाकार वे नहीं थे। वे कानून बनवा सकते थे लेकिन जमे हुए संस्कारों को, जिनका संबंध हृदय से होता है, निकाल नहीं सकते थे।"15

'वैदिकी हिंसा, न भवति' के बाद भारतेन्दु का दूसरा लोकिप्रय प्रहसन 'अंधेर नगरी' है। "अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा" शीर्षक ही इस प्रहसन का अर्थ स्पष्ट रूप से व्यंजित करता है। कहा जाता है कि प्रहसन की रचना भारतेन्दु ने एक दिन में बिहार के एक राजा को लक्ष्य कर की थी। उसके बाद राजा पर प्रहसन का गंभीर प्रभाव पड़ा और राजा न सिर्फ सुधर गया बल्कि भारतेन्दु के ग्रंथों के प्रकाशन में सहायता भी की। छः अंकों के इस प्रहसन में एक मूर्ख सत्ताधारी तथा निरंकुश राजा के राज्य में फैली अंधेर गर्दी का चित्रण व्यंग्यात्मक ढंग से किया गया है। अंधेर नगरी का राजा प्रत्यक्ष रूप में संपूर्ण देश के राजा, नवाबों और जमींदारों का प्रतिनिधि पात्र है और अप्रत्यक्ष रूप से कहीं-कहीं वह अंग्रेजी सरकार को भी प्रतिबिंबित करता है। वस्तुतः वह भारत सरकार और संपूर्ण दोषपूर्ण राज्य व्यवस्था का प्रतीक है। नाटक के दूसरे अंक में बाजार का दृश्य अद्भुत है। कबाब वाला,

नारंगी वाला, कुंजडीन, जाति वाला इत्यादि सभी पात्र अपनी जातिगत और व्यक्तिगत विशेषताओं को व्यंजित करते हैं। 'अंधेर नगरी' के संदर्भ में डॉ.दशरथ ओझा ने लिखा है, "इस नाटक में ग्रामीण जनता ने आद्योपान्त जितना हास्य-विनोद पाया, उतना ही राष्ट्रीयता का पाठ भी अनजाने सीख लिया। अन्यायी राजा को अंत में टिकरी पर चढ़ाकर भारतेन्दु जी भविष्य में भारतोद्धार की ओर भी संकेत करते हैं। अकेले इस नाटक ने जितना उपकार ग्रामीण जनता का किया उतना कदाचित ही अद्यावधि किसी अन्य नाटक ने किया हो।"16 आम बोलचाल की भाषा में लिखा गया भारतेन्दु का यह लोकिप्रिय प्रहसन रंगमंचीय दृष्टि से भी सफल रचना है।

सन 1884 ई. में रचित 'सती प्रताप' नाटक भारतेन्दु की अपूर्ण रचना है। भारतेन्दु इस नाटक के मात्र चार दृश्य ही लिख सके थे, बाद में राधाकृष्ण दास ने इसे पूरा किया। सत्यवान-सावित्री की प्रसिद्ध पौराणिक कथा को इसमें आधार बनाया गया है। इस गीति-रूपक के माध्यम से भारतेन्दु ने नारी को प्रस्तुत किया है। यहाँ पारिवारिक जीवन को महत्व दिया गया है। चूंकि यह भारतेन्दु की अंतिम कृति थी इसलिए भाषा के स्तर पर यह अन्य नाटकों से ज्यादा सशक्त है, संवाद अपेक्षाकृत सुन्दर और परिमार्जित हैं।

भारतेन्दु के अनुदित नाटकों की चर्चा भी यहाँ प्रासंगिक हो जाती है 'विद्यासुन्दर' की रचना भारतेन्दु ने 1868 ई. में की। यह नाटक यतीन्द्र मोहन ठाकुर के बंगला नाटक का अनुवाद है। इस नाटक में वर्द्धमान की राजकुमारी विद्या एवं राँचीपुर का राजकुमार सुन्दर के प्रेम का वर्णन है। इस नाटक के पात्र, प्रसंग, नाटक की योजना सभी कुछ बंगला नाटकों के आधार पर है 'नाटक प्रेम के क्षेत्र में 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य के साथ पितृ अनुशासन का परामर्श देता है। नाटकीय उद्देश्य की दृष्टि से भारतेन्दु 'विद्या सुन्दर' में प्रेम-विवाह की स्वच्छंद प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना चाहते थे। हिन्दी में प्रेम-विवाह के सामाजिक प्रश्न को आधार बनाकर लिखा जाने वाला यह प्रथम नाटक है।"17 किन्तु इस नाटक में कुछ त्रुटियां भी हैं। विद्या और सुन्दर दोनों एक-दूसरे को देखे अथवा मिले बगैर ही सिर्फ जनश्रुति के आधार पर प्रेमपाश में बंध जाते हैं। जबकि प्रेम का बीजारोपण एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचानने और समझने के बाद ही होता है और यदि शुक्ल जी की शब्दावली का प्रयोग करें तो बिना परिचय के प्रेम संभव नहीं हैं इस प्रकार विद्या और सुन्दर का प्रेम कृत्रिम प्रतीत होता है। इसके अलावा नाटक में भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति तथा भाषा की शिथिलता है।

'रत्नावली नाटिका' थानेश्वर के राजा हर्ष द्वारा रचित संस्कृत नाटिका है, जिसका हिन्दी अनुवाद 'रत्नावली' नाम से भारतेन्दु ने किया। 'रत्नावली' की भूमिका में भारतेन्दु ने लिखा है "शकुन्तला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली नाटिका बहुत अच्छी और पढ़ने वालों को आनंद देने वाली है, इस हेतु से मैंने पहले इसी नाटिका का तर्जुमा किया है।"18 प्रस्तुत नाटक वत्सराज और रत्नावली के प्रेम-प्रकरण से संबधित है। परन्तु यह नाटक अधूरा है। केवल नान्दी प्रस्तावना तथा विशकंभक भाग ही उपलबध है। सन 1872 में देवदत्त तिवारी ने भी अपने ढंग से इस नाटक का अनुवाद किया, किन्तु तिवारी जी का यह प्रयास (अनुवाद) असफल रहा। 'नाटक' निबंध में भारतेन्दु ने तिवारी जी के अनुवाद की बड़ी आलोचना की है। इसके बाद पं. रामेश्वर भट्ट (1895) और बालमुकुन्द गुप्त (1898) ने भी

इस नाटक का अनुवाद किया जो तिवारी जी के अनुवाद से उत्कृष्ट है, परन्तु भारतेन्दु की तुलना में उन्नीस ही सिद्ध होता है।

'पाखण्ड विडम्बना' कवि कृष्ण मिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का सफल और सशक्त अनुवाद है। भारतेन्दु ने कथा के निर्माण में अपनी मौलिक यथार्थवादी दृष्टि का परिचय दिया है। भारतेन्दुयुगीन धार्मिक विडम्बनाओं पर आधारित इस नाटक में यह दृष्टव्य है कि किस प्रकार धर्म की व्याख्या में सतोगुण का ह्रास तथा रजोगुण और तमोगुण की प्रतिष्ठा होती जा रही है। 'नाटक का उद्देश्य धार्मिक पाखण्डियों का खण्डन करते हुए वैष्णव-भक्ति के महत्व का प्रतिपादन करना है। नाटक में मनुष्य की भाव-वृत्तियों-शांति, करुणा, मोह, श्रद्धा आदि को नाटकीय चरित्रों के रूप में उपस्थित किया गया है। सभी पात्र प्रतीकात्मक है। दिगंबर सिद्धांत, भिक्षुक बुद्धागम और सोम सिद्धांत क्रमश: जैन, बौद्ध और शैव धर्म के विकृत और भ्रष्ट रूप को प्रस्तुत करते हैं।"19 सजीव, प्रवाहशील भाषा से निर्मित यह नाटक सामाजिक दृष्टि से अश्लील किन्तु नाटकीयता के प्रश्न पर सफल है।

'धनंजय-विजय' व्यायोग के मूल रचनाकार कांचन कवि हैं। इस व्यायोग से प्रभावित होकर भारतेन्दु ने इसका अनुवाद किया है। इसमें महाभारत के उस प्रसंग को कथाबद्ध किया गया है जब पाण्डव अपने अज्ञातवास का समय राजा विराट की छत्रछाया में व्यतीत करते हैं। व्यायोग शैली में निर्मित 'धनंजय-विजय' नाटक में एक ही अंक है, परन्तु इसमें आधुनिक एकांकियों की कला को निर्दिष्ट करने की क्षमता है। मूल नाटक के भरतवाक्य में कुछ परिवर्तन करके भारतेन्दु ने तत्कालीन शासक वर्ग, जो नित्य नये कर लगा रहा था, का विरोध किया है। नाटक में अर्जुन के युद्ध-कौशल के वर्णन, गौरक्षा के भाव के साथ-साथ वीर तथा रौद्र रसों की प्रधानता है।

राजशेखर कवि द्वारा प्राकृत भाषा में विरचित 'कर्पूर मंजरी' सट्टक का अनुवाद करके भारतेन्दु ने हिन्दी समाज को सट्टक की विशिष्टताओं से परिचित कराया है। इस नाटक में साधु-संन्यासियों, पाखण्डी तांत्रिकों के अनैतिक कार्यो तथा भ्रमित नीतियों पर प्रहार किया गया है। नाटक का लक्ष्य कार्य जाति का उत्थान और वैष्णव भक्ति को पुष्ट, प्रबल बनाना है। शास्त्रीय नियमों पर आधारित कथा-योजना में श्रृंगारिकता की प्रधानता है। हास्य और व्यंग्य का प्रयोग भी अतिसुन्दर है।

संस्कृत नाटककार विशाखदत्त का प्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद कर भारतेन्दु ने युगीन राजनीतिक चरित्रों और उनके षड्यंत्रों से सामान्य जन को सचेत करने का पूरा प्रयास किया है। राजनीतिक घटनाक्रमों तथा समयसापेक्षता की दृष्टि से भारतेन्दु ने अनुवाद में कहींकहीं परिवर्तन किया है, किन्तु मूल कृति की मौलिकता को बरकरार रखा है। शास्त्रीय नाट्य-विधान के प्रतिपादन के साथ-साथ गद्य तथा पद्यानुवाद का सुन्दर सामंजस्य है। ऐतिहासिक कथानक के आधार पर निर्मित यह नाटक अभिनय, दृश्य-विधान एवं रंगमंचीय तत्वों से पूर्ण है।

'दुर्लभ बन्धु शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का हिन्दी रूपांतरण है। इस नाटक में पात्रों के नाम तथा स्थान, संवाद में परिवर्तन करके भारतेन्दु ने नाटकीय स्थितियों का पूर्ण रूप से भारतीयकरण कर दिया है, जो उनकी मौलिक दृष्टि का परिचायक है। सच्ची मित्रता और भ्रष्ट धनिकों के समूह में सच्चे सहृदय व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ही नाटक का मुख्य उद्देश्य

है। "मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का भारतीयकरण करने के कारण नाटककार ने ईसाई और यहूदी धर्मों को हिन्दू और जैन धर्मों में परिवर्तित कर दिया। नाटक को भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए भारतेन्दु ने इसकी भाषा में देशज, भोजपुरी आदि बोलियों के शब्दों का प्रयोग किया है।.....नाटक अभिनय के योग्य है तथा अनुवाद की दृष्टि से सफल है।"20

भारतेन्दु और सहयोगियों के अनुवाद कार्यो के माध्यम से नवीन प्रवृत्तियों का परिचय दिया। बंगला-भाषा उस समय उन्नत हो चुकी थी और नवीन ज्ञान-विज्ञान के प्रभाव में आने के कारण बंगाली साहित्यकार अग्रगामी रचनाएँ कर रहे थे। भारतेन्दु ने बंगला से कृतियों का अनुवाद कर अपनी भाषा की कमी को दूर करने का प्रयास किया। भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य में उच्च कोटि के नाटकों की अल्प संख्या थी और अभिनय की दृष्टि से उन्नत रंगमंच का भी अभाव था। नाट्य-कला को विकसित करने एवं रंगमंच के उत्थान के लिए देशी-विदेशी विभिन्न भाषाओं के नाटकों का अनुवाद ही आवश्यक था। अनुवाद का यह महत्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने किया। इस प्रकार शेक्सपियर, इब्सन, मोलियर इत्यादि महान नाटककारों के अनुवाद से भारतीय नाट्य-कला में पाश्चात्य पद्धति का सम्मिश्रण होने लगा और रंगमंच उत्तरोत्तर उत्कृष्टता की आरे बढ़ने लगा। लेकिन तथ्य की यही व्याख्या पर्याप्त नहीं है। इस परिघटना से भारतेन्दु व उनके सहयोगियों के मानसिक विस्तार और अनुभूति की व्यापकता का पता चलता है। दूसरी भाषाओं की गतिविधियों से परिचित होना प्रगतिशीलता का लक्षण है। भाषा के प्रश्न पर भारतेन्दु उदार थे और दूसरी भाषाओं से अच्छी चीजों को ग्रहण करना ठीक समझते थे। परिचय और विस्तार का ही एक पक्ष अंग्रेजी साहित्य से जुड़ता है। अंग्रेजी साहित्य के प्रति रूचि और समझ के बल पर वे कई सार्थक प्रयोग कर सके। अनुवाद के एक महत्वपूर्ण पक्ष की ओर श्री विजयेन्द्र स्नातक ने भी संकेत किया है, "भारतेन्दु तथा उनके समकालीन साहित्यकारों की दृष्टि पुनरूत्थान के प्रयास में सबसे पहले अपने अतीत पर गई। अतीतोन्मुखी यह दृष्टि प्रतिक्रियावादी न होकर प्रगतिशील थी यद्यपि इसमें पुरातन साहित्य का अनुशीलन ही प्रधान था। संस्कृत साहित्य के अनुशीलन के लिए अनुवाद कार्य पर इस काल के लेखकों ने ध्यान दिया और कालिदास, भवभूति, शूद्रक, श्रीहर्ष, विशाखदत्त, क्षेमेन्द्र आदि की रचनायें हिन्दी में अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत की गई।"21

नाटक और रंगमंच दोनों का विकास समान गति से हो, आवश्यक नहीं है। प्रसाद जैसे नाटककार को रंगमंच से सदा शिकायत बनी रही। रंगमंच की हीनता के कारण उनके नाटक मंचित न हो सके। भारतेन्दु युग में नाटकों की प्रगति के बार में चर्चा हो चुकी है। रंगमंच का विषय उपेक्षित नहीं था। जिस प्रकार नाटक में भारतेन्दु ने प्रयोग किए, उसे पश्चिमी और संस्कृत परंपराओं से समृद्ध किया, उसी प्रकार रंगमंच में भी प्रयोग हुए। "ऐसी ही प्रगतिशीलता हम उन्नसवीं सदी में पश्चिमी सभ्यता, साहित्य और

रंगमंच के सम्पर्क में आने के बाद अपने रंगमंच में देखते हैं। स्वयं पश्चिमी दुनिया की दृष्टि से हमारा उस समय का रंगकार्य कितना ही पुराना क्यों न हो, पर भारतीय रंगमंच के लिए उस जमाने के नाटक और प्रदर्शन प्रगतिशील ही थे। वे अपने देश के प्राचीन और मध्ययुगीन रंगमंच से हर दृष्टि से भिन्न थे। उन नाटकों की

विषयवस्तु तो अलग थी ही, उनका नाट्य-रूप, शिल्प और प्रस्तुतिकरण की शैली, सभी कुछ भारतीय रंगकर्मियों और दर्शकों, दोनों के लिए ही एकदम अपरिचित, नया और प्रयोगात्मक था।"22 इतना ही नहीं, श्री नेमिचंद जैन आगे यह भी बताते हैं कि आगे के सौ वर्ष तक हमारा रंगमंच छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ वैसा ही चला। भारतेन्दु को रंगमंच का जो रूप विरासत में मिला, वह लोकिप्रिय तो था, किन्तु अगम्भीर था। फारसी रंगमंच तड़क-भड़क, चमक-दमक और कृत्रिम प्रस्तुतिकरण को वरीयता देता था। उसी के अनुसार नाटक और नाटकों का गठन भी होता था। भारतेन्दु ने नाटकों का स्थान और रूप तो बदला ही, स्वाभाविक रूप से रंगमंच को बदलने का भी उद्यम किया। जैसे कि श्री नेमिचंद जैन बताते हैं इसमें अपनी संस्कृत की परंपरा और पष्चिमी परंपरा, दोनों का उपयोग किया गया। भारतेन्दु अपने सहयोगियों के साथ स्वयं अभिनय करते थे, नाटकों का मंचन करते थे। "भारतेन्दु जी, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी उद्योग करके अभिनय का प्रबंध किया करते थे और कभी-कभी स्वयं भी पार्ट लेते थे.....प्रताप नारायण मिश्र का अपने पिता से अभिनय के लिए मूँछ मुड़ाने की आज्ञा माँगना प्रसिद्ध ही है।"23

आचार्य शुक्ल के इस कथन से रंगमंच संबंधी तत्कालीन श्रम और प्रयासों का अनुमान लगाया जा सकता है। रंगमंच और नाटक के इसी संतुलन के कारण उस समय नाटक और रंगकर्म की इतनी उन्नति हुई और बाद का द्विवेदी युग इस काल की तुलना में सूखा लगता है।

इस प्रकार संक्षेप में हमने भारतेन्दु के नाट्य-व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त करने के क्रम में देखा कि उनका अनुभव संसार बहुत विस्तृत और विविधता से पूर्ण है। भारतेन्दु के हाथों कई विधाओं का सूत्रपात हुआ, हिन्दी भाषा का निर्माण हुआ और हिन्दी साहित्य में पुनर्जागरण का कार्य हुआ इतने बड़े फलक पर काम करता हुआ व्यक्ति निश्चय ही विवादों से ग्रस्त हो सकता है। उन पर पुनरूत्थानवादी राजभक्त होने का आरोप लगा। सुमित सरकार ने लिखा है, "भारतेन्दु हरिश्चंद्र जिन्हें उनके नाटकों को कविताओं और पत्रकारिता के कारण आधुनिक हिन्दी का जनक माना जाता है। स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने की अभ्यर्थना के साथ ही न्यायालय मे उर्दू के स्थान पर हिन्दी लाने एवं गो-वध पर रोक लगाने की मांग करते थे। राजनीति में वे मूलतः राजभक्त ही रहे।"24

यहाँ सुमित सरकार साम्प्रदायिकता और साहित्य को लेकर चर्चा कर रहे है। इन प्रश्नों को लेकर भारतेन्दु की भूमिका के संदर्भ में काफी बहसें हुई हैं, जिनका यहाँ संदर्भ नहीं है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि भारतेन्दु के नाटक, रंगमंच और नाट्यालोचना के क्षेत्र में जो कार्य किया वह हिन्दी साहित्य को आधारभूत सम्पन्नता प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ। नेमिचंद जैन ने लिखा है, "इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि पिछले तीन-चार दशक की बहुमुखी रंगमंचीय हलचलों के बावजूद, हमारे देश में नाट्यालोचना अभी शैशवावस्था में ही है। देश की किसी भी भाषा में नाटक रंगमंच संबंधी सार्थक और गंभीर आलोचनात्मक लेखन बहुत ही विरल है।"25 यहाँ श्री जैन अपनी बात 1988 के वर्ष में कह रहे हैं। इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि विवेच्य वर्ष से लगभग नौ दशक पहले भारतेन्दु के कार्य का क्या महत्व हैं।

निष्कर्ष

भारतेन्दु का अध्ययन हमारे लिए उपयोगी और चुनौतीपूर्ण है। उनके साहित्य के अनुशीलन से हम हिन्दी साहित्य के आंरभिक वर्षों की विभिन्न चुनौतियों एवं उसकी प्रगतिशीलता को एक साथ देख पाते हैं। जिस युग के वे निर्माता हैं, वह युग हमारे साहित्य की विविध विधाओं का अक्षय स्रोत है, जिससे हमारी स्रोतस्विनी आज भी पूरे हिन्दी साहित्य जगत् को रस-सिंचित करती चली जा रही है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 Vasudha Dalmia, 'The Nationalization of Hindu Traditions: Bhartendu Harischandra And Nineteenth Century Banaras' Oxford.,1997,pp-429

2 डॉ.रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, भूमिका

3 डा.नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 432

4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणीस, पृष्ठ 248

5 वही, पृष्ठ 248

6 वही, पृष्ठ 318

7 शिव प्रसाद मिश्र (सम्पा.), भारतेन्दु ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 752

8 डॉ. मौ.शाहिद हुसैन इन्दर सभा की परंपरा, सीमांत प्रकाशन, दिल्ली भूमिका

9 प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 84

10 डॉ. रमेश गौतम, नीलदेवी, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 10

11 शिवप्रसाद मिश्र (सम्पा.), भारतेन्दु ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 251

12 डॉ. रमेश गौतम, नीलदेवी, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 12

13 वही, पृष्ठ 14

14 प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, विचार विविध, पृष्ठ 30

15 डॉ.रमेश गौतम, नीलदेवी, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 20

16 डॉ.दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 146

17 डॉ. रमेश गौतम, नीलदेवी, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 7

18 शिव प्रसाद मिश्र (सम्पा.), भारतेन्दु ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 661

19 डॉ. रमेश गौतम, नीलदेवी, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 8

20 वही, पृष्ठ 10

21 प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, विचार विविधा, पृष्ठ 27

22 नेमिचंद जैन, दृश्य-अदृश्य, पृष्ठ 110

23 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा ,वाराणसी, पृष्ठ 248

24 सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 103

25 नेमिचंद जैन, दृश्य-अदृश्य, पृष्ठ 259